23 जुलाई: आजाद के जन्म दिन पर विशेष

चन्द्र शेखर आजाद: पंडित से विद्रोही

मलविन्दर जीत सिंह वढ़ैच*

23 जुलाई 1906 को जंगली-कबायली इलाके के गांव भावरा में जन्मे, 14 साल के चन्द्र शेखर, स्कूली पढ़ाई और वहां के दम-घुटमें माहौल से तंग आकर, घर से चोरी भाग कर, जा पहुंचे सीधे बंबई – वहां के एक मोतियों के व्यापारी के साथ, जो उनके गांव आता-जाता था और बंबई महानगरी की चमक-दमक के बारे चन्द्र शेखर को बताया करता था।

बंबई पहुंचकर चन्द्र शेखर ने पाँच-छः महीने समुन्द्री जहाजों की सफाई का काम किया। धीरे-धीरे उन्हें बम्बई के इस यंत्रवत् जीवन से घृणा हो गई। वे यह अनुभव करने लगे कि यदि उन्हें पेट भरने के लिए नौकरी या मजदूरी ही करनी थी तो वह अलीराजपुर में मिल ही गई थी। उसके लिए घर छोड़कर इतने कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता थी। तब एक रविवार को जब वे नहा-धोकर होटल में भोजन करने गए तो भोजन करते-करते उन्होंने बम्बई छोड़ने का निश्चय कर लिया। परन्तु वे वापस घर जाना नहीं चाहते थे, इसीलिए संस्कृत पढ़ने बनारस में जाने का विचार किया। उन्होंने अपने पिताजी से सुन रखा था कि संस्कृत पढ़ने के लिए लोग बनारस जाते हैं। ब्राह्मणों के बच्चों की वहाँ रहने-खाने की निःशुल्क व्यवस्था होती है तथा पहनने को कपड़ा भी दानी दे देते हैं। होटल से भोजन के पश्चात् उन्होंने सीधे रेलवे स्टेशन की राह पकड़ी। सामान तो घर से कुछ लेना नहीं था जो कुछ था वह पास ही था और एक सप्ताह की कमाई भी तो जेब में थी ही। स्टेशन पर जानकारी प्राप्त कर बनारस की गाड़ी में बैठ बनारस आ पहुंचे।

संस्कृत के अध्ययन केन्द्र के रूप में वाराणसी नगरी बहुत पुरानी थी। इस्लाम और ईसाइयत के आने से पहले भारत में देवभाषा का एकमात्र शिक्षा केन्द्र यहीं थी। दूर-दूर से लोग ज्ञान से समृद्ध देवभाषा सीखने आते थे। हिन्दुओं में ही नहीं बल्कि सारे प्राच्य देशों में शिक्षा का दान एक मिशन माना जाता था। छात्रों से अध्यापक किसी प्रकार की कोई फीस नहीं लेते थे। शिक्षकों की ही यह जिम्मेवारी होती

* Email: mjswaraich29@gmail.com; Ph: 0172-2556314, 6576116

कि छात्रों के रहने और भोजन की व्यवस्था करें। प्राचीन भारत में राजा लोग गुरुओं की सहायता करते थे। राजाओं और ऋषियों की सहायता से शिक्षा दी जाती थी।

एक अज्ञात मजदूर से संस्कृति का छात्र हो जाना एक बहुत बड़ी छलाँग थी। संस्कृत के छात्रों की बहुत कदर की जाती थी, क्योंकि तरह-तरह के दान-दाताओं पर आश्रित रहने वाले इन छात्राओं की दुरावस्था, दन्त-कटाकटी की एक जटिल पद्धति के नीचे छिपी रहती थी। यह मजे की बात है कि इनमें से अधिकांश छात्र संस्कृत व्याकरण पढ़ते थे और बारह साल तक या उससे अधिक समय तक प्रत्यय और धातु घोटते रहते थे मानो व्याकरण अपने में एक उद्देश्य हो और उसका साहित्य के अध्ययन से कोई सम्बन्ध न हो। चन्द्रशेखर आज़ाद भी व्याकरण के छात्र बन गए और वे 'लघुकौमुदी' और 'अमरकोश' में फँसे रहे।

आज़ाद, संस्कृत के छात्रों में जो सहयोगी बने, उनमें सबसे कम उम्र के थे। उस समय वे ज्ञानवापी के पास एक शिवालाय में रहते थे। आज़ाद इस आन्दोलन में भाग लेकर खरे घाट नामक एक पारसी मजिस्ट्रेट के सामने स्वयं को 'आज़ाद' बताने पर चन्द्रशेखर आज़ाद कहलाने लगे। उन्होंने यह नाम अपने-आप ग्रहण किया था। आज़ाद को 15 बेंत भी लगे थे और हर बेंत में उन्होंने 'भारत माता की की जय' का नारा लगाया था।

शायद स्कूल में पढ़ना संभवत: उनके भाग्य में ही नहीं था। घर पर उनके माता-पिता पढ़ाना चाहते थे तब वे नहीं पढ़े और बनारस में जब वे पढ़ाई की ओर बढ़े तो 'असहयोग आन्दोलन' ने उन्हें आज़ादी का दीवाना और राष्ट्र-भक्त बना दिया तथा देश के स्वतंत्रता संग्राम में उतरने के लिए उन्हें प्रेरित किया। विद्यार्जन फिर सिमट कर रह गया और यहीं से उनके राष्ट्रीय जीवन संघर्ष का श्री गणेश हुआ।

देश में असहयोग आन्दोलन चल रहा था, बनारस में भी जिसकी आग पहुँच गई। यहाँ सबसे पहले यह आन्दोलन संस्कृत कॉलेज के धरने से प्रारम्भ हुआ। स्वदेशी का अंगीकार तथा विदेशी वस्तुओं एवं अंग्रेजी शिक्षा के बहिष्कार का नारा बुलन्द किया गया। बहुत से विद्यार्थियों ने स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई छोड़ दी। 1921 में संस्कृत कॉलेज बनारस पर धरना देते समय चन्द्रशेखर भी पकड़े गए।

तब-तक वे आज़ाद नहीं बल्कि केवल चन्द्रशेखर तिवारी के नाम से ही पहचाने जाते थे। इन सत्याग्रहियों के मुकदमे खरे घाट की अदालत में चला करते थे। चन्द्रशेखर के साथ जो विद्यार्थी गए थे उन्हें कठोर कारावास का दण्ड दिया गया और चन्द्रशेखर की उम्र लगभग 15 वर्ष की होने के कारण उन्हें 15 बेंतों की सजा का आदेश हुआ।

अदालत में मुकदमे के समय जब चन्द्रशेखर से उनका नाम पूछा गया तो उन्होंने अपना नाम बताया – 'आज़ाद'।

'बाप का नाम?'

'स्वाधीन।'

'घर का पता?'

'जेल खाना।'

इसी के बाद से वे चन्द्रशेखर 'आज़ाद' के नाम से पुकारे जाने लगे और जीवन के अन्त तक आज़ाद ही रहे। (कुछ व्यक्तियों ने यह भी कहा या लिखा है उनका नाम 'आज़ाद' श्रीप्रकाश या डॉ. भगवानदास जी ने रखा था, परन्तु वैसी कोई बात नहीं थी।) उन दिनों यह प्रथा-सी चल पड़ी थी कि

लोग अदालत में अपना वास्तविक नाम न बताकर उल्टे सीधे नाम बता दिया करते थे। उसी तरह चन्द्रशेखर ने अपना नाम आज़ाद बताया था और फिर श्रीप्रकाश आदि उन्हें इसी नाम से पुकारने लगे।

आज़ाद को बेंतों की सजा दी जाने के बाद उन्हें बेंत लगाने के लिए वाराणसी की सेंट्रल जेल भेज दिया गया। उन दिनों वहाँ गण्डासिंह जेलर थे। जेल में अधिकारियों ने आज़ाद को बहुत समझाया कि वे माफी माँग लें पर वे अपने निश्चय से तिल भर भी न डिगे। **आज़ाद ने न तो जीवन में किसी से माफी मांगी और न ही किसी के अपराध को हृदय से क्षमा किया।** आखिर उन्हें पन्द्रह बेंत लगाए गए।

> यह सजा इन्हें वाराणसी की केन्द्रीय जेल में दी गई थी, जहाँ गण्डासिंह जेलर थे। बाद में गण्डासिंह ने मुझे इस बेंत लगने के सम्बन्ध में एक चश्मदीद गवाह के रूप में अपना वर्णन दिया था।
>
> 1933-34 में मैं फतेहगढ़ सेंट्रल जेल में था। ज्यों ही मैंने गण्डासिंह के सामने आज़ाद का नाम लिया, त्यों ही वह चिन्तित हो गए और बोले – "हाँ-हाँ, मुझे उनके चेचक के दागवाला चेहरा याद है। मैं फौरन पहचान गया कि यह व्यक्ति क्रान्तिकारी है।"
>
> इसमें सन्देह नहीं कि जब गण्डासिंह के सामने आज़ाद को बेंत लगे थे, उस वक्त आज़ाद में क्रान्तिकारी भावना थी पर वह अभी क्रान्तिकारी दल के सदस्य नहीं बने थे।[2]

बेंतों का कठोर दण्ड

जेल में बेंतों की सजा कोई साधारण बात नहीं होती। स्कूल की तरह नहीं कि मास्टर ने कहा हाथ फैलाओ और विद्यार्थी ने हाथ फैला दिए और कुछ क्षणों में ही बेंत की सजा समाप्त हो गई, परन्तु जेलों में बेंतों की सजा आज भी है। इन्हें कसूरी बेंत कहते हैं। जेल के कानूनों को भंग करने के अपराध में यह सजा जेल सुपरिंटेंडेंट देता है जो एक बार में 30 बेंतों तक दी जा सकती है तथा कुल मिलाकर 90 बेंतों से अधिक नहीं दी जाती। जेल की भाषा में जो कैदी 90 बेंत खा चुका हो उसे 'खलीफा' कहकर पुकारते हैं। अधिकारी उसे अधिक काम नहीं देते। ऐसे खलीफा दो-चार शागिर्द भी बना लेते हैं जो उन्हें बीड़ी, तम्बाकू या अन्य खाने-पीने की चीजें लाकर भेंट करते हैं।

मैंने अपने आठ वर्ष के जेली जीवन में अनेक कैदियों को ये कसूरी बेंत खाते देखा है। तब तक मुझे यह अनुमान नहीं हो सका था कि आज़ाद को उन बेतों से कितनी यातना हुई होगी। उस घटना की कहानी तो मैं उनके मुंह से सुन चुका था और उनके शरीर पर उन घावों के निशान भी देखे थे, परन्तु उस पीड़ा का वास्तविक चित्र जब मेरे सामने आया तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए। तभी मैं समझ सका कि ब्रिटिश शासन को मिटा देने का प्रण आज़ाद ने उस भयंकर यातना के बाद किया तो ऐसा करना स्वाभाविक ही था।

जब कैदी को बेंत लगते हैं तो उसे एक टिकटिकी से बाँध दिया जाता है ताकि वह हिल न सके। उसे नंगा करके एक झिरझिरा कपड़ा उसकी पीठ पर लगा दिया जाता है। जेल सुपरिंटेंडेंट तथा अन्य अधिकारी उस समय वहाँ उपस्थित रहते हैं। भंगी बेंत मारता जाता है और अधिकारी गिनता जाता है।

जो कैदी बेंत खाते हैं वे अक्सर पहले से चरस या गांजा पी लेते हैं, जिससे उस समय बेंतों की पीड़ा महसूस नहीं होती। बाद में पीठ के घावों के कारण वे महीनों मुंह के बल ही पड़े रहते हैं। अनेक

कैदी बेंत खाने के बाद टिकटिकी से उतरकर अधिकारियों को भद्दी से भद्दी गाली उनके सामने ही देकर कहते हैं चार बेंत और लगा लें। बेंत लगने के पूर्व कैदियों की डॉक्टरी जाँच होती है, यदि उनका दिल कमजोर हुआ या और कोई ऐसी बीमारी हुई जिससे वह बेंत खाने में असमर्थ हो तो कुछ समय के लिए सजा स्थगित कर दी जाती थी।

बेंत लगाने वाला अक्सर जेल में सजा काटने वाला मेहतर होता है। जिस दिन वह बेंत लगाता है उसे अस्पताल से सेर भर (1 किलो) दूध मिलता है। वह नित्य ही पेड़ पर टाट के गद्दे बाँध, उस पर बेंत लगाने का अभ्यास करता है। ये बेंत पतले और काफी लम्बे होते हैं तथा इन्हें पानी में रखा जाता है। मारते समय मेहतर पट्टे के पैंतरे की तरह पूरी ताकत से बेंत मारता है। कई बार तीस से कम बेंतों की सजा में भंगी घूस लेकर इस प्रकार बेंत लगाता है कि अधिकारी तो समझता है कि बेंत जोरों से लग रहे हैं, परन्तु वे हल्के लगते हैं तथा कैदी चिल्लाता है अपनी पूरी शक्ति से। यह 'कला', अदालती बेंतों की सजा में होती है। ऐसे अवसरों पर बेंत की सजा भुगतने वाले व्यक्ति के रिश्तेदार अफसरों की पेट पूजा कर देते हैं। पर जेल की सजा में यह भ्रष्टाचार कम ही हो पाता है। राजनैतिक बंदियों के मामले में तो अदालत की सजा या जेल के बेंतों की सजा में कोई अन्तर नहीं होता।

चन्द्रशेखर आज़ाद ने ये कसूरी बेंत हंसते-हंसते खाए। हर बेंत के साथ वे 'भारत माता की जय' और 'वंदे मातरम्' के नारे लगाते जाते थे। जिन बेंतों को खाते समय नामी बदमाशों के छक्के छूट जाते हैं, वे बेंत आज़ाद ने लगभग 15 साल की उम्र में बड़ी बहादुरी से सहन किए। हर बेंत के साथ उनके मन में प्रतिशोध की अग्नि प्रज्वलित होती रही और देश को स्वतंत्र कराने का संकल्प दृढ़ से दृढ़तर और दृढ़तर से दृढ़तम होता गया।

बेंत लगने के बाद आज़ाद को जेल से बाहर कर दिया गया और जाते समय नियमानुसार उन्हें तीन आने पैसे (6 पैसों का एक आना) दिए गए थे। आज़ाद ने वे पैसे बड़े तैश से वहीं जेलर के मुंह पर फेंक मारे। घावों पर जेल डॉक्टर ने दवा लगा दी थी फिर भी रक्त बहना बन्द नहीं हुआ था। वे किसी तरह पैदल ही घिसटते अपने स्थान को चले आए। शिव विनायक मिश्र ने अपने एक लेख में लिखा है कि बेंत लगने के बाद सराय गोवर्धन में गौरीशंकर शास्त्री ने उनके घाव ठीक होने तक उनकी सेवा की थी।

देखते-देखते ही वे 'हीरो' बन गए। उनकी मशहूरी का अंदाजा, पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा अपनी आत्मकथा में किए उस जिकर से लगाया जा सकता है कि उन्होंने '1921 से ही आजाद का नाम सुन रखा था।'....

काशी ज्ञानवापी में पहुंचने पर उनका भव्य स्वागत हुआ। इसमें बहुत बड़ी संख्या में लोग उपस्थित थे। आज़ाद के छोटे कद के कारण जनता की अपार भीड़ उन्हें देख नहीं पा रही थी। लोगों ने शोर मचाना प्रारम्भ किया। इस पर आज़ाद को एक मेज पर खड़ा किया गया तब कहीं लोग उन्हें देख सके। लोगों ने उन्हें फूल-मालाओं से लाद दिया था। उसी दौरान चर्खे के पास खड़ा कर उनका एक चित्र लिया गया था।